HIN3B18b **जयशंकर प्रसाद (१८८९-१९३७)**

१ - < कानन कुसुम : प्रभो !

विमल इन्दु की विशाल किरणें,
प्रकाश तेरा बता रही हैं ।
अनादि तेरी अनन्त माया
जगत को लीला दिखा रही हैं ॥

प्रसार तेरी दया का कितना
यह देखना हो तो देखे सागर ।
तेरी प्रशंसा का राग प्यारे
तरंगमालाएँ गा रही हैं ॥

तुम्हारा स्मित हो जिसे निरखना
वो देख सकता है चन्द्रिका को ।
तुम्हारे हँसने की धुन में नदियाँ
निनाद करती ही जा रही हैं ॥

विशाल मन्दिर की यामिनी में
जिसे निरखना हो दीपमाला
तो तारिकाओं की ज्योति उसका
पता अनूठा बता रही है ॥

प्रभो ! प्रेममय प्रकाश तुम हो
पकृति पद्मिनी के अंशुमाली
असीम उपवन के तुम हो माली
धरा बराबर जता रही है ॥

जो तेरी होवे दया दयानिधि
तो पूर्ण होता ही है मनोरथ ।
सभी ये कहते पुकार करके,
यही तो आशा दिला रही है ॥

२ < झरना : **अतिथि**

हृदय गुफा थी शून्य,
रहा घर सूना ।
इसे बसाऊँ शीघ्र,
बढ़ा मन दूना ॥

अतिथि आ गया एक ,
नहीं पहचाना ।
हुए नहीं पद शब्द,
न मैंने जाना ॥

हुआ बड़ा आनन्द,
बसा घर मेरा ।
मन को मिला विनोद,
कर लिया घेरा ॥

उसको कहे "प्रेम",
अरे अब जाना ।
लगे कठिन नख रेख,
तभी पहचाना ॥

अतिथि रहा वह किन्तु
ना घर बाहर था ।
लगा खेलने खेल,
अरे, नाहर था ॥

३ - < झरना : **कब ?**

शून्य हृदय में प्रेम-जलद-माला कब फिर घिर आवेगी ?
वर्षा इन आँखों से होगी, कब हरियाली छावेगी ?
रिक्त हो रही मधु से सौरभ सूख रहा है आतप है ;
सुमन कली खिलकर कब अपनी पंखुड़ियाँ बिखरावेगी ?
लम्बी विश्व कथा में सुख की निद्रा-सी इन आँखों में -
सरस मधुर छवि शान्त तुम्हारी कब आकर बस जावेगी ?
मन-मयूर कब नाच उठेगा कादंबिनी छटा लखकर ;
शीतल आलिंगन करने को सुरभि लहरियाँ आवेंगी ?
बढ़ उमंग-सरिता आवेगी आर्द्र किये रूखी सिकता ;
सकल कामना स्रोत लीन हो पूर्ण विरति कब पावेगी ?

४ - < लहर : **लहर (७)**

बीती विभावरी जाग री !
अम्बर पनघट में डुबो रही -
तारा-घट-ऊषा नागरी ।
खग-कुल कुल कुल-सा बोल रहा,
किसलय का अञ्चल डोल रहा,
लो यह लटिका भी भर लाई -
मधु मुकुल नवल रस गागरी ।
अधरों में राग अमन्द पिये,
अलकों में मलयज बन्द किये -
तू अब तक सोई है आली !
आँखों में भरे विहाग री !

५ - < लहर : **लहर (११)**

वे कुछ दिन कितने सुन्दर थे ?
जब सावन-घन सघन-बरसते-
इन आँखों की घाया भर थे ।

सुरधनु रंजित नवजलधर से-
भरे, क्षितिज व्यापी अम्बर से,
मिले चूमते जब सरिता के,
हरित कूल युग मधुर अधर थे ।

प्राण पपीहा के स्वर वाली-
चरस रही थी जब हरियाली-
रस जलकन मालती मुकुल से-
जो मदमाते गन्ध विधुर थे ।

चित्र खींचती थी जब चपला
नील मेघ-पट पर वह बिरला,
मेरी जीवन-स्मृति के जिसमें-
खिल उठते वे रूप मधुर थे ।

६ - < लहर ; **लहर (१२)**

मेरी आँखों की पुतली में
तू बनकर प्रान समा जा रे !
जिसके कन-कन में स्पन्दन हो,
मन में मलयानिल चन्दन हो,
करुणा का नव अभिनन्दन हो -
वह जीवन गीत सुना जा रे !
खिंच जाय अधर पर वह रेखा -
जिसमें अंकित हो मधु लेखा,
जिसको वह विश्व करे देखा,
वह स्मिति का चित्र बना जा रे !

७ - < **कामायनी** : **१ - चिंतन**

हिमगिरि के उत्तंग शिखर पर बैठ शिला की शीतल छाँह
एक पुरुष भीगे नयनों से देख रहा था प्रलय-प्रवाह

नीचे जल था, ऊपर हिम था
एक तत्त्व की ही प्रधानता

एक तरल था, एक सघन,
कहो उसे जड़ या चेतन ।

दूर-दूर तक विस्तृत था हिम
नीरवता सी शिला चरण से

स्तब्ध उसी के हृदय समान,
टकराता फिरता पवमान ।

तरुण तपस्वी-सा वह बैठा
नीचे प्रलय सिंधु लहरों का

साधन करता सुर-श्मशान,
होता था सकरुण अवसान । .../...

२ - आशा

उषा सुनहले तीर बरसती
उधर पराजित कालरात्रि भी

जय-लक्ष्मी-सी उदित हुई,
जल में अंतनिहित हुई ।

वह विवर्ण मुख त्रस्त प्रकृति का
वर्षा बीती, हुआ सृष्टि में

आज लगा हँसने फिर से,
शरद विकास नये सिर से ।

नव कोमल आलोक बिखरता
सित सरोज पर क्रीड़ा करता

हिम संसृति पर भर अनुराग,
जैसे मधुमय पिंग पराग ।

धीरे-धीरे हिम-आच्छादन
जगीं वनस्पतियाँ अलसाई

हटने लगा धरातल से,
मुख धोती शीतल जल से ।

नेत्र निमीलन करती मानो
जलधि लहरियों की अँगड़ाई

प्रकृति प्रबुद्ध लगी होने,
बार-बार जाती सोने ।

सिंधु सेज पर धरा वधू अब
प्रलय निशा की हलचल स्मृति में

तनिक संकुचित बैठी-सी,
मान किये-सी ऐंठी-सी ।

देखा मनु ने यह अतिरंजित
जैसे कोलाहल सोया हो

विजन विश्व का नव एकांत,
हिम, शीतल जड़ता-सा

इन्द्रनील मणि महा चषक था
आज पवन मृदु साँस ले रहा

सोम रहित उलट लटका,
जैसे बीत गया खटका ।

.../...